International Journal of Information Movement Vol.2 Issue IX (January 2018)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 88-90

स्वाभाविक भेदाभेदवाद में मोक्ष विचार

पानो कुमारी,
नेट , शोध छात्रा,
दर्शनशास्त्र विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची।
E-mail - panokumari2013@gmail.com

निम्बार्काचार्य का वेदांत भेदाभेदवाद या स्वाभाविक भेदाभेदवाद के नाम से जाना जाता है। भेदाभेद का अर्थ है कि ब्रह्म का चित् और अचित् के साथ का संबंध अलग अलग दृष्टिकोण से भेद और अभेद दोनों है। चित् और अचित् ब्रह्म से भिन्न भी है और अभिन्न भी, तथा यह भिन्नता और अभिन्नता दोनों ही समान रूप से सत्य है। निम्बार्क जीव एवं जगत् का ब्रह्म से भेदान्वित अभेद (Identity in difference) के संबंध को प्रतिपादित करते हैं अर्थात् जीव और जगत् का ब्रह्म से भेद होते हुए भी उनमें आधारगत अभेद सम्बन्ध है। निम्बार्क कहते हैं कि चित् और अचित् का ब्रह्म से भेद और अभेद दोनों ही समान रूप से सत्य और स्वाभाविक है। अतः निम्बार्क के वेदान्त को स्वाभाविक भेदाभेदवाद कहते हैं।

1.0 जीवात्मा का स्वरूप :

जीवात्मा चित् स्वरूप है वह ज्ञाता और ज्ञान दोनों है। वह कर्मों का कर्त्ता और उनके फलों का भोक्ता है। जीवात्माएँ अनन्त हैं। हर जीव अणु रूप है। वे ब्रह्म से उसी प्रकार संबंधित है, जिस प्रकार सूर्य से उसकी किरणें। जीव हरि के अंश हैं। जीव और जगत् का ब्रह्म से न पूर्ण ऐक्य है और न उनमें पूर्ण भेद हैं। उनके बीच तो भेदाभेद या द्वैताद्वैत का संबंध है। इसे निम्बार्क विभिन्न उपमाएँ देकर समझाते हैं। निम्बार्क कहते हैं कि जीव और जगत्–ब्रह्म से वैसे ही संबंधित है जैसे सागर से लहरें संबंधित है। लहरों का सागर से न पूर्ण ऐक्य है और न उनमें पूर्ण भिन्नता है। लहरें सागर से भिन्न हैं क्योंकि वे स्वंय सागर नहीं हैं, और लहरें सागर से भिन्न भी नहीं है, क्योंकि सागर से अलग लहरों की कोई सत्ता नहीं होती है। इस प्रकार लहरे सागर से भिन्न और अभिन्न दोनों है। ठीक उसी प्रकार जीव एवं जगत् ब्रह्म से भिन्न एवं अभिन्न दोनों है निम्बार्क कहते हैं कि इस भिन्नता और अभिन्नता का कोई कारण नहीं है। ये पूर्णतः स्वाभाविक है। इनके अनुसार प्रसिद्ध श्रुति वचन 'तत्वमसि' भी यही कहता है कि जीव (त्वम्), ब्रह्म (तत्) से भिन्न और अभिन्न दोनों है। स्वरूपतः वे अभिन्न है, परंतु वे एक दूसरे से अंश और उसके संकल्प, नियन्त्रित और नियन्ता तथा भक्त और भगवान के सम्बन्ध से सम्बन्धित होने के कारण भिन्न भी है।

2.0 मोक्ष:

निम्बार्क के मत में साधन का मार्ग शरणागति (प्रपत्ति) है जीव जब तक भगवान् के शरण में नहीं आता, तब तक उसका वास्तव में कल्याण नहीं होता। प्रपन्न होते ही भगवान् का अनुग्रह जीवों पर होता है। अनुग्रह होने से भगवान के प्रति रागात्मिका भक्ति का उदय होता है। भगवान जिस पर अपनी दया की वर्षा करते हैं वही जीव उनकी ओर आकृष्ट होकर प्रेम करता है। निम्बार्क का यह विश्वास है कि जीवों में सांसारिक सुखों से विरक्ति और मोक्ष प्राप्ति की इच्छा भी ईश्वर कृपा का ही परिणाम है। जन्म के समय ईश्वर जिस जीव को कृपापूर्वक देख लेता है, प्रारम्भ से ही उस जीव की प्रवृति जीवन में लक्ष्यों को प्राप्त करने की ओर होती है।

ये कहते हैं कि मोक्ष ब्रह्म के ज्ञान और ईश्वरीय कृपा इन दोनों का सामूहिक फल है। जीव अपने पुरूषार्थ से अर्थात् केवल ज्ञान से मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। इसके लिए ईश्वरीय कृपा भी आवश्यक है। परंतु वह स्वच्छन्द नहीं है। वह केवल योग्य पात्र (ज्ञानी) को ही मिलती है। जीव जब इन दोनों को प्राप्त कर लेता है तो मोक्ष प्राप्ति के योग्य हो जाता है। ऐसे जीव के मोक्ष प्राप्त करने में केवल तब तक ही विलम्ब है जब तक कि शरीर द्वारा उसके प्रारब्ध कर्मों का भोग समाप्त नहीं हो जाता। प्रारब्ध कर्मों का भोग समाप्त होने पर उसकी आत्मा शरीर का परित्याग कर देती है और देवयान मार्ग से ब्रह्म लोक को पहुँचती है। रामानुज के समान निम्बार्क भी मुक्ति के पाँच सोपानों को मानते हैं। सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य।

1. सालोक्य मुक्ति – अर्थात् ब्रह्मलोक की प्राप्ति।
2. सार्ष्टि मुक्ति – अर्थात् ब्रह्म के ऐश्वर्य का उपभोग करना।
3. सामीप्य मुक्ति – अर्थात् ब्रह्म से सामीप्य लाभ प्राप्त करना।
4. सारूप्य मुक्ति – अर्थात् ब्रह्म के स्वरूप का लाभ प्राप्त करना।
5. सायुज्य मुक्ति – अर्थात् ब्रह्म के साथ एक रूप हो जाना।[1]

3.0 मोक्ष प्राप्त करने के साधन:

निम्बार्क के अनुसार मोक्ष प्राप्त करने के पाँच साधन हैं – कर्म, विद्या या ज्ञान, उपासना, प्रपत्ति, गुरूपासत्ति।

3.1 कर्म : निम्बार्क ज्ञान–कर्म समुच्चय में विश्वास करते हैं। वे कहते हैं कि मोक्ष प्राप्त करने के लिए गृहस्थाश्रम छोड़कर संन्यासी बनना आवश्यक नहीं है। यदि हम स्वधर्मों का पालन निष्काम भाव से, उसके फलों को ईश्वर को समर्पित करके करें तो ईश्वर हमारे चित् की शुद्धि करते हैं और मोक्ष के लिए आधार तैयार करते हैं क्योंकि ज्ञान का उदय शुद्ध चित् से ही हो सकता है।

3.2 विद्या या ज्ञान: 'ब्रह्म ज्ञान' अज्ञान और उसके परिणाम का नाश करता है ये ही बंधन के कारण है। ज्ञान की उत्पत्ति के लिए निम्न साधनाएँ आवश्यक है।

(क) वेदों द्वारा निर्धारित धर्मों का आचरण निष्काम भाव से करना।
(ख) आत्मनियंत्रण, सहनशीलता इत्यादि नैतिक गुणों को प्राप्त करना।
(ग) गहन अध्ययन तथा जीवन में सरलता इत्यादि गुणो को प्राप्त करना।

4.0 श्रीमद् भागवत् 3.29.13

4.1 उपासना: उपासना भी तीन प्रकार की है।

(क) पहली वह है, जिसमें जीव अपना निष्पाप एवं शुद्ध रूप में ध्यान करते हुए ईश्वर की अपनी आत्मा के नियन्ता के रूप में उपासना करता है।
(ख) ईश्वर की विशालता एवं उसके सर्वज्ञता आदि गुणों का परिचय प्राप्त करने के लिए जीव परमात्मा की जड़ जगत् के नियंत्रक रूप से उपासना करता है।
(ग) इसमें साधन समस्त जगत् को ब्रह्ममय जान प्राणि मात्र को ब्रह्म दृष्टि से देखने लगता है।

4.2 प्राप्ति: प्रपत्ति का अर्थ ईश्वर को पूर्ण आत्मसमर्पण कर देना है। यह मोक्ष प्राप्त करने का सर्वाधिक सरल और प्रभावशाली साधन है, इसके छः अंग इस प्रकार हैं –

(क) सबके प्रति सद्भावना रखना।
(ख) किसी के भी प्रति दुर्भावना न रखना।
(ग) ऐसी श्रद्धा होना कि ईश्वर हमारी रक्षा करेगा।
(घ) ईश्वर को अपने मुक्तिदाता के रूप में स्वीकार करना।
(ड.) स्वयं को असहाय अनुभव करना।
(च) ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाना।

4.3 गुरुप्राप्ति : गुरुप्राप्ति का अर्थ गुरू को पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर देना है, गुरू जीव और ईश्वर के बीच मध्यस्थ है और जीव को ईश्वर की ओर ले जाता है। जीव के मोक्ष के लिए जो कुछ आवश्यक होता है वह सब गुरू के माध्यम से ही होता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार शिशु के लिए सभी आवश्यक कार्य माँ करती हैं।

इस प्रकार निम्बार्क मोक्ष प्राप्ति के इन पाँचों साधनों को स्वीकार करते हैं तथा यह भी स्वीकार करते हैं कि ईश्वर की भक्ति इन सभी साधनों में रहना अनिवार्य है। वे भक्ति का मूल अर्थ – ''ईश्वर के प्रति एक विशेष प्रकार का प्रेम'' को मानते हैं।

निम्बार्क जीवनमुक्ति में विश्वास नहीं करते। वे केवल विदेह मुक्ति में ही विश्वास करते हैं ''देहपाते सति मुक्तिरेत''[1] निम्बार्क देह–पात के अनन्तर ही मुक्ति मानते हैं। मुक्ति में जीव ईश्वर के ही समान, सर्वज्ञ, शुद्ध स्वरूप एवं अन्य गुणों को प्राप्त कर लेता है।[2]

1. वेदांत पारिजात सौरभ – 4/1/14
2. ब्रह्म साक्षाकार द्वैतोस्नेन सह साम्यं यादि – वेदांत पारिजात सौरभ – 3/2/26

5.0 निष्कर्ष:

निम्बार्काचार्य का वेदांत भेदाभेदवाद या स्वाभाविक भेदाभेदवाद के नाम से जाना जाताहै। भेदाभेद का अर्थ है कि ब्रह्म का चित् और अचित् के साथ का संबंध अलग अलग दृष्टिकोण से भेद और अभेद दोनों है। वेदांत के समस्त सम्प्रदाय किसी न किसी स्तर पर भेदाभेद के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। कोई सम्प्रदाय भेद पर अधिक बल देता है तो कोई सम्प्रदाय अभेद पर। शंकर जीवात्मा और ब्रह्म के अभेद को मानते हुए भी व्यावहारिक स्तर पर कार्य–कारण में भेदाभेद मानते हैं। रामानुज ब्रह्म, जीव, जगत के बीच अभेद पर जोर देते हैं तो कार्य–कारण में भेदाभेद भी मानते हैं, भास्कर भी

शक्तिविक्षेपलक्षण परिणाम ब्रह्म में मानते हैं। परंतु वे ब्रह्म और जड़ में स्वभाविक भेदाभेद मानते हैं, मध्वाचार्य उपादान कारण और उसके कार्य में भेदाभेद संबंध मानते हैं। निम्बार्क के अनुसार जीव ब्रह्म से भिन्न और अभिन्न दोनों ही है। परन्तु जब जीव अविद्या (माया) से मोहित होता है तो बंधन में पड़ जाता है, मोक्ष प्राप्त करने के लिए जीव को ईश्वर की कृपा आवश्यक होती है। निम्बार्क ने मुक्ति के वे पाँच सोपान बतलाए हैं– सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारुप और सायुज्य। इसके अतिरिक्त पाँच प्रकार के साधन मोक्ष प्राप्त करने के लिए बतलाएँ हैं– कर्म, अविधा या ज्ञान, उपासना, प्रपति और गुरुपासत्ति।

इन सभी में ईश्वर की कृपा आवश्यक है। इन सभी साधनों में ईश्वर की भक्ति का रहना अनिवार्य है। तभी जीव मोक्ष को प्राप्त कर सकता है जीव केवल अपने पुरुषार्थ के द्वारा मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त निम्बार्क जीवन मुक्ति को न मान कर विदेह मुक्ति को मानते हैं। उनके अनुसार मुत्यु के बाद ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।मोक्ष प्राप्त करने के बाद जीव ब्रह्म के समान हो जाता है।

6.0 सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. गैरोला वाचस्पति, भारतीय दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009
2. स्वामी, डा0 किशोर दास, भारतीय दर्शन और मुक्ति मीमांसा, महालक्ष्मी ग्लास वर्क्स प्रा0लि0, बम्बई, 1980
3. पाठक राममूर्ति, भारतीय दर्शन, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004
4. वेदांत दर्शन, (श्री ब्रह्मसूत्र) भाषा व्याख्याकार महन्त श्री स्वामी संतदास जी ब्रजविदेही , भारतीय कला प्रकाशन, 2011
5. AGARWAL,MADAN MOHAN,The Philosophy Of Nimbarka,Jain Book,Depot,Agaru Road ,1979
6. Misra,Umesh: Nimbarka School Of Vedanta All Alabad ,1963
7. Srinivas (Immediate Disciple Of Nimbarka Vedanta – Kaustubna ,Benaras,1932.